International Journal of Advanced Education and Research
ISSN: 2455-5746; Impact Factor: RJIF 5.34
Received: 14-02-2020; Accepted: 15-03-2020; Published: 16-04-2020
www.alleducationjournal.com
Volume 5; Issue 2; 2020; Page No. 31-33

स्वतंत्रता आन्दोलन में क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का वैचारिक आयाम

कल्पना कुमारी
शोधार्थी, इतिहास विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारतं

सारांश
स्वतंत्रता आंदोलन में क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का भारत में ऐतिहासिक महत्त्व है। बिहार में 19वीं शताब्दी के आरंभिक चरण में क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का उद्भव तथा विकास हुआ। बिहार में औपनिवेशिक शासकों ने स्वावलंबी ग्राम व्यवस्था को नष्ट कर बिहार में एक सामाजिक क्रांति के लिए भौतिक स्थितियों का सृजन किया था। उनके आधार पर सामाजिक क्रांति के दायित्व को पूरा करने का कर्तव्य क्रमिक गति से होने लगी। इस सामाजिक क्रांति के लिए कम से कम दो ऐसे भौतिक कारण मौजूद हो गए थे जो इस क्रांति को आगे ले जाने में महती भूमिका का निर्वहन करने वाले थे।

मूल शब्द: क्रांतिकारी, वैचारिक आयाम, स्वतंत्रता आंदोलन

प्रस्तावना

औपनिवेशिक सत्ता के हाथ में बिहार के भविष्य का निर्णय बिहार को ऐसी जगह ला खड़ा किया था जहाँ से उसका संपूर्ण पूंजीवादी और साम्राज्यवादी आर्थिक, राजनीतिक नीतियों के खिलाफ जाता था। इस कारण इस संगठित संघर्ष के स्वरूप के संबंध में कोई भी, जो थोड़ी समझदारी रखता था, यह समझ सकता था कि यह अपने विकास क्रम में साम्राज्यवाद विरोधी व्यापक वर्गशक्तियों को एकताबद्ध करते हुए साम्राज्यवाद के खिलाफ हो रहे अन्य राज्यों के आंदोलनों के साथ अपनी एकता भी बनाएगा और व्यापक क्रांतिकारी प्रक्रिया के साथ अपने को संबद्ध करते हुए आगे बढ़ेगा। सामाजिक क्रांति के लिए बिहार में जो दूसरी महत्वपूर्ण भौतिक स्थिति का निर्माण स्वावलंबी ग्राम व्यवस्था के विध्वंस के बाद बन रहा था वह था क्रमिक गति से जन्म ले रहे विभिन्न वर्गों का औपनिवेशिक शासकों के साथ बढ़ता अन्तर्विरोध मगर आधुनिक औद्योगिक विकास की अवरूद्धता के कारण यह वर्गीय ध्रवीकरण अपनी प्रक्रिया में काफी धीमा था और शुरू के वर्षों में अस्पष्ट भी दिखता था।

औपनिवेशिक सत्ता के खिलाफ संघर्ष में जो भारतीय वर्ग समूह संघर्ष का नेतृत्व कर रहा था वह ब्रिटिश उपनिवेशवाद या साम्राज्यवाद को आर्थिक राजनीतिक नीतियों के खिलाफ संघर्ष में किसी प्रगतिशील विकल्प की रहनुमाई करने वाला वर्ग नहीं था, बल्कि यह वही वर्ग था जिसकी समीचीनता की मशीनी उत्पादन प्रणाली द्वारा उत्पन्न संबंधों ने असंगत बना दिया था और यह ऐतिहासिक विकास प्रक्रिया में समाज को आगे ले जाने की अपनी क्षमता को खो चुकी थी यानि यह वर्ग था मरणासन्न बिहारी सामंतवाद। यह मूल कारण था कि अपूर्व सांप्रदायिक एकता और जन समर्थन के बावजूद भी वह मशीनी सभ्यता और उसके आधार पर गठित ब्रिटिश सैन्यबल के सामने पराजित हो गया। इस तथ्य का स्पष्टीकरण इससे भी होता है कि बाद के वर्षों में उदीयमान बिहारी पूँजीपति वर्ग के और उसके सबसे काबिल तबका उच्च मध्यम वर्ग के द्वारा शुरू किया गया आंदोलन क्रमिक गति से आगे बढ़ता गया। बाद में यह एक विशाल जन आंदोलन का रूप ग्रहण कर लिया।[1] चूँकि यह वर्ग ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ एक एन्टीथेसिस के रूप में जन्म लिया था इस कारण साम्राज्यवाद, जो राष्ट्रों को गुलाम बनाकर उनके शोषण की व्यवस्था पर आधारित था, तुलना में राष्ट्रीय आजादी की एक प्रगतिशील कार्यक्रम के साथ सामने आया था, अपने का सफलतापूर्वक आगे बढ़ाया।

क्रांतिकारी आंदोलनों का दमन और शिक्षित वर्ग की हमदर्दी सरकार के प्रति लाना और यह कार्य क्रांतिकारी आंदोलनों के खिलाफ दमन और शिक्षित लोगों को सरकारी अनुकंपा और उनकी मांगों पर सहानुभूति पूर्वक विचार करके करने के प्रतिबद्धता थी। साम्राज्यवाद का यह दोहरा चरित्र एक सोची–समझी रणनीति थी जो शिक्षित वर्ग को प्रभावित करने वाली थी। कांग्रेस के पहले अधिवेशन में साम्राज्यवाद के प्रति पूर्ण निष्ठा का भाव प्रदर्शित किया गया। अधिवेशन में जो भी प्रस्ताव पारित किए गए – जिनकी कुल संख्या नौ थी – मात्र एक को छोड़कर सारे के सारे कतिपय ऐसे प्रशासनिक सुधारों की तरफ लक्षित थे जो शिक्षितवर्ग के हित में थे। राष्ट्रीय जनतांत्रिक मांगों में एक मात्र एक मांग थी जो विधान परिषदों में कुछ चुने गए सदस्यों को लेने संबंधी प्रार्थना की गई थी। अधिवेशन की समाप्ति पर जो सम्मान हयूम को दिया गया था उसके संबंध में ह्यूम ने कहा कि चूँकि जयकार का काम मुझे सौंपा गया है इसलिए मैं सोचता हूँ कि देर आया दुरूस्त आया के सिद्धांत को मानते हुए हम सभी तीन बार ही नहीं तीन गुणा तीन अर्थात् नौ बार और यदि हो सके तो नौ गुणा तीन अर्थात् 27 बार उस महान विभूति की जय बोलें जिसके जूतों के फीते खोलने के लायक भी मैं नहीं हूँ, जिसके लिए आप सब प्यारे हैं और जो आप सबकों अपने बच्चों के समान समझती है अर्थात् सब मिलकर बोलिए महामहिम महारानी विक्टोरिया की जय।[2]

निश्चय कांग्रेस की स्थापना सरकार की जी हुजुरी से ही प्रारंभ हुई मगर इस जी हुजुरी और तलवे चाटने, विक्टोरिया के जूतों के फीतें खोलने लायक भी न होने आदि जैसी शब्दावली का प्रयोग अंग्रेजों के ही द्वारा हुआ है, उपस्थित भारतीयों ने उसका समर्थन जरूर किया। जो संगठन साम्राज्ञी विक्टोरिया के जयगान और प्रशस्ती गान से आरंभ हुआ उसे ब्रिटिश सरकार विरोधी होने में ज्यादा समय नहीं लगा क्योंकि ब्रिटिश सरकार विरोधी जनभावना का ज्वार काफी ऊँचा था और उसे नजरअंदाज करना आगे के लिए कठिन था। कांग्रेस का जो वर्ग चरित्र उभड़ा–शिक्षित उच्च मध्य वर्ग के लोगों के संगठन का उसके हितों का टकराव साम्राज्यवाद के साथ–साथ देश के अंदर पनप रहे और बढ़ रहे क्रांतिकारी आंदोलनों के साथ भी था। इस कारण कांग्रेस ने शुरू से ही अपने को दोहरे चरित्र वाले संगठन

के रूप में विकसित किया – क्रांतिकारी आंदोलनों के दबाने के लिए साम्राज्यवाद के साथ समझौता और अपनी वर्गीय मांगों के लिए साम्राज्यवाद के साथ संघर्ष। यह क्रम कांग्रेस न स्वतंत्रता आंदोलन के संपूर्ण काल में किया। फिर भी इन सारे विश्लेषणों का यह अर्थ नहीं है कि कांग्रेस की स्थापना करनेवाले भारतीय साम्राज्यवाद के दलाल थे और वे भारत के साथ गद्दारी भरी एक ऐसी साजिश में शामिल हो गए थे जिसे साम्राज्यवादी शासक अपने बचाव के लिए खड़ा कर रहा था। कोई भी ऐसा विश्लेषण मनोवादी और गलत निष्कर्षों वाला होगा। एक कुंद पड़ी औद्योगिक विकास प्रक्रिया में हुए दरिद्रीकरण की भौतिक स्थितियों में एक पिछड़ी राजनैतिक चेतना का आभाव और वर्गीय ध्रुवीकरण के अभाव में वर्गीय संगठनों के निर्माण की अनुपलब्धता में उनका यह प्रयास किसी दलाली का सबव नहीं था। वे राष्ट्रवादी थे और अपनी मांगों के लिए उनका तरीका प्रार्थना वाला था।

निश्चय ही शुरूआती दौर के ये राष्ट्रवादी नेता अपनी इस समझ से सही थे कि वह काल भारतीय मुक्ति के लिए किसी निर्णायक संघर्ष को शुरू के करने के ऐतिहासिक दायित्व को पूरा करने की वस्तु स्थितियों को पूरा नहीं करता था, मूल प्रश्न जन लामाबंदी की गारंटी का जो जनचेतना में राजनीति को ले जाने, राजनीतिक प्रश्नों पर वैचारिक एकता को बनने के उद्देश्य से लोगों को राजनीतिक में शिक्षित करने और संपूर्ण भारत की एकता को सुनिश्चित करते हुए मांगों को तैयार कर आगे बढ़ने का। इस कारण उन्होंने आर्थिक–राजनीतिक मांगों के आधार पर संपूर्ण भारत को प्रभावित करनेवाली समस्याओं को उठाया, अपनी आर्थिक मांगों को रखते हुए उन्होंने साम्राज्यवाद के तीन प्रमुख शोषण के स्त्रोतों, व्यापार उद्योगों और वित्त के खिलाफ आवाजें उठानी शुरू की। उन्होंने ब्रिटिश शासन को इस नीति का जिसके द्वारा भारत को ब्रिटिश उद्योगों के लिए कच्चे माल के आपूर्तिकर्ता, तैयार माल के बाजार और ब्रिटिश पूंजी के भारत में निवेश के खिलाफ आवाजें उठाई तथा अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में साम्राज्यवाद से भारत के सारे संबंधों को समाप्त करने की दलीलें रखी। दादाभाई नौरोजी ने भारत की गरीबी के कारणों का उल्लेख करते हुए लिखा कि भारत की गरीबी का राज है उसका ब्रिटेन द्वारा शोषण, जिसने भारतीयों को अमेरिकन दासों से भी बदतर स्थिति में ला पटका है, क्योंकि दासों की देखभाल तो वे लोग जिनकी वे संपत्ति है करते हैं मगर भारतीयों को तो भाग्य भरोसे छोड़ दिया गया है। इन लोगों ने स्वदेशी को आंदोलन का एक मुद्दा बनाकर भारत के पौराणिक ग्राम व्यवस्था की पुनर्स्थापना की मांगें उठाई।

इसी बीच 1927 में सहजानंद सरस्वती ने पश्चिमी पटना किसान सभा की अनौपचारिक स्थापना की। दो सालों के बाद 1929 में बिहार प्रांतीय किसान सभा की स्थापना हुई, जिसके वे अध्यक्ष बने। 1929 में सोनपुर की मीटिंग में जो मांग की गई वे थी – कब्जा तब्दीली, कुंआ खोदना और कब्जे वाली जमीन पर पेड़ लगाना और लगान का परिसीमन करना। सहजानंद अभी तक एक गांधीवादी थे। जंग–ए–आजादी के लिए वे खेतिहर समाज की एकता चाहते थे। उस समय के लगभग सभी कांग्रेसी बिहार प्रांतीय किसान समिति (बि. प्रां. कि. स.) के सदस्य बन गए। सिवाय ब्रजकिशोर प्रसाद के जिसकी नजर में बि. प्रां. कि. स. खतरनाक थी। सरकार ने इस सभा को स्वराजियों की एक चाल कह कर खारिज कर दिया। लेकिन इस सभा का प्रचार–प्रसार इतना सशक्त था कि सरकार को टिनैंसी एक्ट में संशोधन का विचार छोड़ना पड़ा। किसान सभा के सबसे निचले स्तर के कार्यकर्ताओं को 1929 में बल्लभ भाई पटेल के भाषणों से बहुत प्रोत्साहन मिला।[3]

पटेल ने एक बात जोर देकर कही कि बारदोली के किसानों से भिन्न बिहार के किसान स्वाग्रही नहीं हैं।[4] फिर भी महत्वपूर्ण बात यह है कि चौकीदारी कर का भुगतान न करने की बात उन्होंने उत्तरी बिहार में दिए गए अपने भाषणों में कही लेकिन हजारीबाग में 4000 खद्दधारी संथालों की एक मीटिंग में उन्होंने कहा कि वे अपनी जरूरतें पूरी कर लेने के बाद ही लगान का भुगतान करें।

संथालों से कहा गया कि वे रामगढ़ इस्टेट की संपत्ति को अपनी समझें और जितनी लकड़ी की जरूरत हो, ले जाएं। हजारीबाग में संथाल आंदोलन की उत्पत्ति का अध्ययन करते समय, उस क्षेत्र में कांग्रेस के संदेश प्रचारित होने के बारे में भी बहुत–सी जानकारियां हासिल हुई। 1929 के मार्च–अप्रैल में संथालों के बीच एक अफवाह फैल गई कि स्वराज्य पार्टी चाहती है। कि वे लोग अपने सूअरों और कुक्कुटों को बेच दें। उस समय के. बी. सहाय और रामप्रकाश लाला स्वयंसेवकों की भर्ती के लिए बरमों और गुमिया थानों का दौरा कर रहे थे।[5] यह अफवाह मई के महीने में मांडू पहुंची और जून–जुलाई में गुकमाया। यह अब केवल संथालों तक ही सीमित नहीं रही। मांडू थाना क्षेत्र में बारामसिया के निरगुन महतो और मंगल महतो ने गुमियां के कुर्मियों को सलाह दी कि वे सूअर और मुर्गे–मुर्गियां न पालें, रांची में उन जातीय प्रथा के मुख्यालय के आदेश पर उन्होंने ऐसा कहा था। पतरबार में इस अफवाह के साथ एक 'रडडरक्लाजश और जुड़ गया कि अगर किसी ने उक्त हिदायतों का पालन नहीं किया तो उनके खेतों में से एक मन धान से ज्यादा कुछ पैदा नहीं होगा। चंदुआ (पलामू) के खैरवार और गंजू में इसमें थोड़ा सुधार कर दिया गया था कि उनकी फसल थोड़ा ठीक होगी तो सूअर का मांस या मुर्गे–मुर्गियां खाना बंद कर देंगे। लेकिन यह कम से कम छह माह तक बंद करना पड़ेगा। गागोदर (हजारीबाग) के गंजू में हुई एक पंचायत में छह महीने तक आंदोलन का समर्थन देने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया गया था। शायद उसी से इसका ताल्लुक था।[6]

बहुत से संथालों ने गांधी को पहली बार 1925 में देखा। उस समय में बोरोबेरा के पास के गांवों का दौरा कर रहे थे। उसके बाद बोरोबेरा से चार मील दूर गमियां गांव के रामदास सोनार को 'नवजीवन' की प्रतियां लगातार मिलने लगी। मडुआटांर गांव में कभी स्कूल मास्टर रह चुके होपना मांझी और तीन अन्य लोगों ने एक साधारण से मजदूर बोगा (बंगम) मांझी को अपना गुरू चुना। ऐसा लगता है कि गांधी में होपना मांझी के विश्वास को देखकर ही बोगा मांझी प्रभावित हुआ। जुलाई 1929 में बोगा मांझी जंगल से 5 लट्ठे ले आया और पाँच खद्दर के झंडे लगाकर उन्हें अपने आंगन में गाड़ दिया। वहीं बैठ कर वह लोगों को उपदेश देता था। उसने यह घोषणा की कि संथाल धर्म को सुधारने के लिए चंदो (भगवान) ने उसे शक्ति प्रदान की है और नये धर्म का पालन करके ही स्वराज पाया जा सकता है। इस धर्म के अनुसार मांसाहार का त्याग करना, जनेऊ धारण करना और खद्दर पहनना जरूरी है। सितंबर 1929 तक 232 गांवों के लोग उसके अनुयायी बन गए थे। हर रोज 50–60 संथाल उससे जनेऊ खरीदते थे। वे एक जनेऊ के लिए 2 पैसे और एक मुट्ठी चावल देते थे। जनवरी आते–आते बोगा के चेलों की संख्या कई गुना बढ़ गई। वे अपने को गांधी का चेला भी कहते थे।

नरमदली नेता साम्राज्यवादी प्रचार के विभिन्न नस्लों, धर्मो जात–पात के दीवारों और एक विशाल भू–भाग पर फैले भारत को एक राष्ट्र के रूप में नहीं। माना जा सकता। इस. साम्राज्यवादी प्रचार का असर तो नरमदली नेताओं पर ऐसा मजबूत था कि वे भारत की जनता के राजनीतिक आंदोलनों में एकताबद्ध होने की संभावना तक में अंधविश्वास करने लगे थे और यही सोच बना लिए थे कि जबतक जात–पात, भाषाई और धार्मिक बाहतडंबर से जनता को अलग नहीं किया जाता है तब तक एक राष्ट्र के रूप में उन्हें आंदोलित करना कठिन है। गोखले ने कहा था कि : देश में अनेक, सीमाहीन विभाजनों और

उप विभाजनों, बहुसंख्यक जनता का अंधकारमय ढंग से जीना और पौराणिक ढंग के मूल्यों के साथ अपने को बांधे रखना और उसी के अनुसार अपने विचारों और भावनाओं को कायम रखना जो किसी भी तरह के बदलावों के खिलाफ हैं जनता को बदलाव का मतलब ही समझने नहीं देते। उदारपंथी नेताओं की वैचारिकता इस तरह की सोच के एक महती भूल का शिकार हो गई थी। उन्होंने जनता की अज्ञानता, निरक्षरता, पिछड़ापन आदि को ही सिर्फ देखा, यह नहीं देखा कि जनता ही किसी आंदोलन की वास्तविक शक्ति होती है, वह कुर्बानी दे सकती है। आंदोलन को साहसिक तौर से आगे बढ़ा सकती है और साम्राज्यवाद के खिलाफ अनवरत संघर्ष के मुख्य कारक की भूमिका में रह सकती है। वे यह नहीं समझ सके कि जनता की सांस्कृतिक पिछड़ापन रूढ़िवादिता तथा उसे विभाजित करने वाले सारे तत्वों का निराकरण आंदोलनों के द्वारा ही हो सकता था। इस तरह की भ्रमित वैचारिकता का परिणाम था कि उदारपंथी यह नहीं जान सके कि बदली जनता नही आंदोलन करती बल्कि आंदोलन जनता को बदल देता है।

निष्कर्ष

यही कारण था कि बिहार में क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का जनवादी चरित्र सामने आया ही नहीं। 1905 के आते–आते क्रांतिकारी प्रक्रिया के बलबली हो रहे परिदृश्य में जो प्रभाव बिहार पर पड़ा उसके बाद क्रांतिकारी राष्ट्रवाद के लिए जिस नये अस्त्र को खोज निकाला गया वह तमाम धार्मिक और अध्यात्मिक अटकलबाजियों से दूर की चीज था और उसका स्वरूप आधुनिक था और वह अस्त था आर्थिक बहिष्कार का जिसका नरमदली नेताओं ने समर्थन किया। यहीं से राष्ट्रीय क्रांतिकारी राष्ट्रवाद के स्वरूप में भी क्रमिक बदलाव को देखा जा सकता है।

संदर्भ–सूची

1. विपिन चन्द्रा, अमलेश त्रिपाठी, वरूण डे, फ्रीडम स्ट्रगल, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, 1983, छठा संस्करण के भूमिका से उद्धृत विचार।
2. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन 1885 की रिपोर्ट।
3. दास, अरविंद एन0, पूर्वोक्त पुस्तक, पृ. 92–94।
4. अमृत बाजार पत्रिका, 15 दिसंबर 1929।
5. देखें, इलस्ट्रेटेड वीकली ऑव इंडिया में शाहिद अमीन का लेख, "वेटिंग फॉर महात्मा'', 5–11 फरवरी 1984।

6- पॉलिटिकल (स्पेशल) 121/1930, गोपनीय डी0 ओ0 नं0 227 सी, 23 अगस्त 1929, बिहार ऐंड उड़ीसा पुलिस ऐब्सट्रैक्ट नं0 39, 23 सितंबर 1929 का अंश।